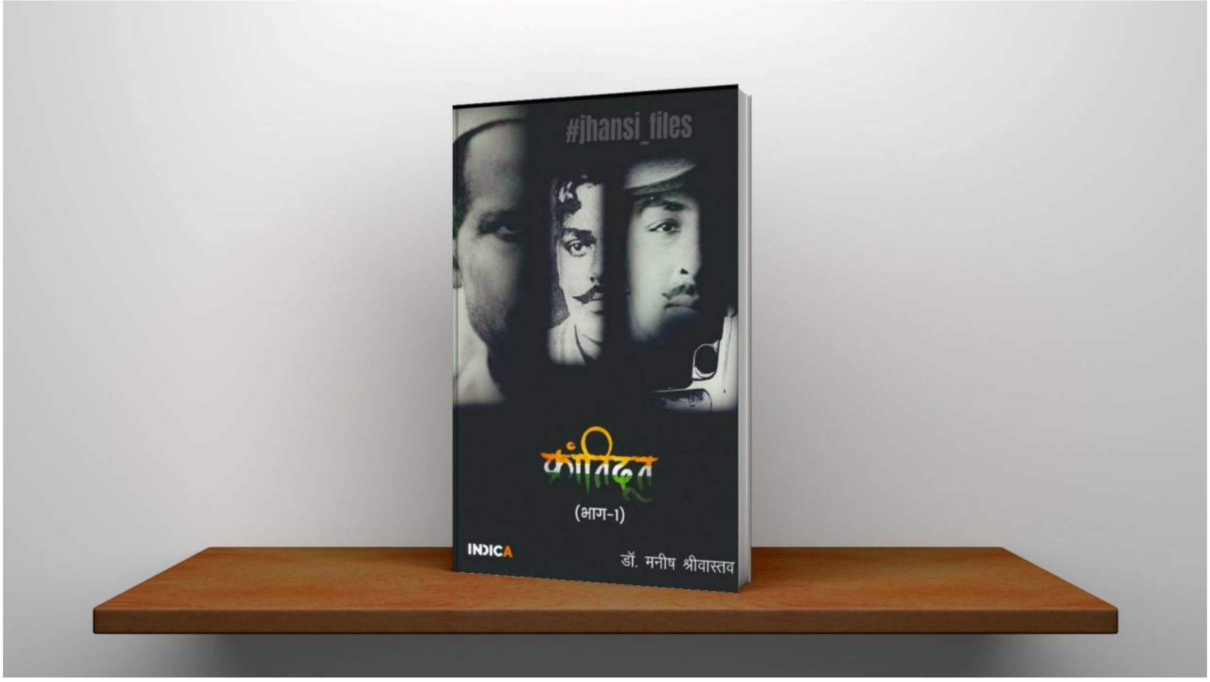
#क्रांतिदूत शृंखला:- भाग-०१

(झाँसी फाइल्स)

(साकेत सूर्येश)



किसी भी सभ्यता के विध्वंस का कारण उसके समाज का अपने ही इतिहास से विमुख हो जाना है। जब तक एक समाज अपने इतिहास के प्रति सजग रहता है, उसके लिए पतन के गर्त से अपने अतीत की महानता के भाव को पुनर्जीवित करने की सम्भावना जीवित रहती है। संस्कृति के इस पुनर्जीवन के की प्रक्रिया में समाज के विचारकों का बहुत हाथ रहता है। इसी वैचारिक स्थितप्रज्ञता ने भारत को कई शताब्दियों के क्रूर विदेशी आधिपत्य के मध्य भी जीवित और जीवंत रखा। राजनैतिक पराभव को सांस्कृतिक पराभव में परिवर्तित करने का सर्वाधिक प्रयास भारत की राजनैतिक स्वाधीनता के पश्चात ही हुआ, यह एक विडम्बना रही है।

ऐसा नहीं है कि १९४७ के पश्चात भारतीय इतिहास के विषय में लिखा नहीं गया, परंतु एक हीनता, एक पराभव के बोध के साथ और बहुधा एक स्पष्ट सी वितृष्णा और उदासीनता के साथ लिखा गया। भारतीयों के मन मस्तिष्क में एक ऐसी लज्जा को भर दिया गया कि जो सभ्यता विदेशी इस्लामी अतिक्रमण के विरुद्ध कोई ६ से ७ शताब्दियों तक लड़ती रही वह ऐसे आत्मनिंदा में खो गई जैसी आत्मनिंदा मात्र ७० वर्षों में ढह गई स्पेन की सभ्यता में भी कभी ना देखी गई। औरंगज़ेब काल में जिस इस्लामिक विस्तारवाद ने सांस्कृतिक विध्वंस का खेल सम्पूर्ण विश्व में खेल जहाँ पारस या ईरान में कोई पारसी ना बचा, उसने भारत में घड़ी भर को पाँव पसारा ही था कि दक्कन में शिवाजी का हिंदवी साम्राज्य ऐसा उठा की अटक से कटक तक मुग़लों की क्षणिक सम्प्रभुता को हिला कर चला गया। भारतीयों के आत्मविश्वास को हिलाने में स्वतंत्र के उपरांत के उन इतिहासकारों का बड़ा हाथ रहा है, जो इतिहासकार कम, नेहरू चारण मंडल के सदस्य अधिक थे। भारतीय वैचारिक धारा के परिचायक कांग्रेसी नेताओं को, जैसे तिलक, मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल जैसे महामानवों को भी एक व्यक्तिवादी महि

मामंडन की होड़ में जैसे औद्योगिक स्तर पर उपेक्षित किया गया उसमें कांग्रेस से बाहर के राष्ट्रवादियों के लिए आशा ही क्या थी। समय के साथ जैसे जैसे कांग्रेस नेतृत्व अधिक से अधिक भारत से काटता चला गया, उपेक्षित नेता एवं क्रांतिकारी नायकों को खलनायक तक बताने की होड़ लगी रही।

ऐसी उदासीनता के समय में संस्कृति को पुनर्जीवित करने का उत्तरदायित्व व्यावसायिक उद्देश्यों एवं राजनैतिक प्रतिबद्धताओं से मुक्त शोधकर्ताओं एवं लेखकों जैसे डॉक्टर मनीष श्रीवास्तव पर आ जाता है। जब क्रांतिदूत जैसी प्रस्तुति हाथ में आती है तो मानो अतीत के उपेक्षित दर्पण से धूल मिटती दिखती है और भारत के भविष्य की छवि सुरक्षित और स्पष्ट दिखती है। आज जब अपने ही इतिहास के राष्ट्रीय नायकों से अनभिज्ञ देश का युवा चे गुआवेरा के पोस्टर लिए घूम रहा है तब मात्र १५० पृष्ठों की क्रांतिदूत को पढ़ते हुए भान होता है मानो मनीष जैसे लेखक श्रीराम की सेना की वह गिलहरी हैं जो भारत के अतीत एवं भविष्य को जोड़ने वाले रामसेतु के निर्माण में लगे हों।

क्रांतिकारी साहित्य बहुत लिखा गया है, स्वयं बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों ने उत्कृष्ट लेखन से अपने युग के इतिहास को अपने लेखन में जीवित किया है, वहीं गणेश शंकर विद्यार्थी, मन्मनाथ गुप्त, शचींद्रनाथ सान्याल आदि ने बहुत लिखा है जिसमें स्वतंत्रता पूर्व के समय का वास्तविक प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। इन पुस्तकों में क्रांतिकारियों की राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति परिपक्व प्रतिबद्धता परिलक्षित होती है वहीं कांग्रेस की ढुलमुल रवैया भी सार्वजनिक होता है। इस प्रकार के प्रश्न भी पाठकों के मन में उठते हैं कि यदि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध गतिविधियों के कारण दतिया के राजा की सम्पत्ति अंग्रेज सरकार अधिग्रहीत कर लेती है तो वही सरकार कांग्रेस के नेतृत्व के प्रति ऐसा स्नेह का व्यवहार कैसे बनाए रखती है कि ३२ शयनकक्षों, दो तरणताल वाले उनके आवास ब्रिटिश संरक्षण में फलते फूलते रहते हैं। ऐसे प्रश्नों से, ऐसी जिज्ञासाओं से नेतृत्व को बचाने के लिए सरल हमारे नेताओं को यह लगा कि यह प्रसंग ही हाशिए पर धकेल दिए जाएँ।

क्रांतिदूत के पुस्तक ऋंखला है जो स्वतंत्रता संग्राम के उन्हीं छूटे हुए पक्षों को बताने का प्रयास करती है। लेखक के अनुसार, प्रत्येक माह इस ऋंखला की एक पुस्तक सामने लाने की योजना है। इस क्रम में झाँसी फ़ाइल्ज़ पहली पुस्तक है और इस समीक्षा के लिखने तक दूसरी पुस्तक काशी फ़ाइल्ज़ भी वितरण में आ चुकी है। मनीष की इसके पूर्व की रचनाएँ- रूही, एवं मैन मुन्ना हूँ- तथ्य और कल्पना की काटती हुई सीमाओं पर लिखी गई थी, वहीं यह पुस्तक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है, परंतु लेखक के भीतर का कथाकार उसके इतिहासकार को नीरस नहीं होने देता है और इस ऐतिहासिक पुस्तक को एक पठनीय मानवीय कथा का रूप देता है।
लेखक की कथाओं की एक शैली है, जो उनकी प्रत्येक पुस्तक में दिखती है, वह है पुस्तक का दैनंदिनी का रूप। मनीष की पुस्तकें समय -
काल का धागा पकड़ के चलती हैं और झाँसी फ़ाइल्ज़ में भी यही शैली दिखती है जब प्रस्तावना ‘अचानक’ शीर्षक के अध्याय से २२ जून १९८१ को झाँसी के निकट सातार नदी के तट पर प्रारम्भ होती है।

पुस्तक का प्रारम्भ काकोरी कांड से होता है, जिसमें सशस्त्र स्वतंत्रता आंदोलन के लिए हथियारों के क्रय के लिए राम प्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में चंद्रशेखर आज़ाद, अश्फ़ाक आदि क्रांतिकारी ब्रिटिश कोषागार के लिए जा रहे धन को लूटते हैं। इसके परिपेक्ष्य में ब्रिटिश मैत्री और संरक्षण में फलते फूलते कांग्रेस आंदोलन के समानांतर पूर्ण स्वराज्य के लिए अपने जीवन को दांव पर लगा कर लड़ रहे साधनहीन क्रांतिकारियों की स्थिति का संक्षिप्त विवरण है। उस साधनहीनता, उस अभावग्रस्त अभियान और उसके मार्ग में अनेकानेक विश्वासघात की घटनाओं के विषय

में बिस्मिल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है। उस आत्मकथा में आज़ाद के विषय में अधिक लिखा नहीं गया है, सम्भवतः आज़ाद उस समय छोटे थे और बिस्मिल के लिए बालक के समान थे अथवा आज़ाद की भविष्य की भूमिका को लेकर बिस्मिल उन्हें प्रचार से दूर रखना चाहते थे ताकि जनता और ब्रिटिश पुलिस की दृष्टि से आज़ाद बचे रहे। कथा संक्षेप में काकोरी कांड का विवरण देती है और उसके बाद के चंद्रशेखर आज़ाद के अज्ञातवास के काल के विषय में चर्चा करती है।

यह कथा, जैसा नाम से विदित है, चंद्रशेखर आज़ाद के झाँसी प्रवास के काल का विवरण देती है जब आज़ाद एक हनुमान भक्त सन्यासी के रूप में ब्रिटिश सरकार से बचे हुए उसी नदी के तट पर अपना आश्रम बनाते हैं जहाँ से लेखक इस कथा को प्रारम्भ देते हैं। इस प्रवास काल के विवरण में हम अन्य नायकों से मिलते हैं, जैसे विश्वनाथ वैशम्पायन जी, भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर। कथा का सबसे सशक्त भाग इसका कथा रूप है जो कथा में प्रवाह और विश्वसनीयता दोनो बनाए रखता है (यदि पुस्तक के अंत में दी गई संदर्भों की सूची पाठक के लिए विश्वसनीयता परखने को पर्याप्त न हो तो)। ऐतिहासिक चरित्रों को आम भाषा में वो भी ग्रामीण बुंदेलखंडी में बात करते देखना बड़ा ही सुखद है। भाषा और लेखन के इस पक्ष का एक लाभ यह भी है कि पाठक चरित्रों से स्वयं को जुड़ा मानता है। इसी भाषा के प्रवाह और तथ्यों के समन्वय से पुस्तक एक भिन्न स्वरूप ले लेती है और अत्यंत ही पठनीय हो जाती है। पुस्तक मात्र ११० पन्नों की है और सरलता से पढ़ी जा सकती है। पुस्तक के जिल्द पर कई समीक्षकों ने लिखा है, सो वह प्रकाशक का उत्तरदायित्व है, उत्तम कथा तो शताब्दियों तक ताड़ पत्रों पर भी पढ़ी गयी है। समस्या मेरी प्रति में भी हो सकती है, अन्यथा पुस्तक के महत्व को देखते हुए प्रकाशक इस पर ध्यान दे सकते हैं। कथा में लखनऊ कांग्रेस स्वागत समिति के अध्यक्ष और क्रांतिकारियों के विरुद्ध ब्रिटिश गवाह बने बनारसीदास का ज़िक्र है परंतु कांग्रेस के ही जगतनारायण मुल्ला जो अंग्रेजों के काकोरी कांड में वकील थे और क्रांतिकारियों को मृत्युदंड दिलवाने में प्रमुख थे, उनका नाम इसमें नहीं है। सम्भवतः उनका नाम बिस्मिल ने भी अपनी आत्मकथा में नहीं किया है, यह कारण हो सकता है। मुझे यह पुस्तक पढ़ने के बाद अधिक पढ़ने का लोभ रहा, जैसे बिस्मिल के अभिभावकत्व में आज़ाद का बड़ा होना, आज़ाद का मुंबई प्रवास और होटेल में बाल श्रमिक हो के कार्य करना, आज़ाद के नामकरण का प्रसिद्ध बेंतों वाला प्रकरण और झाँसी के बाद का काल, यशपाल से मतभेद आदि। ब्रह्मचारी रूप में प्रवास काल में एक कन्या का प्रसंग कुछ विसंगत सा महसूस हुआ, सम्भवतः इस विषय में मेरा अल्पज्ञान इसका कारण रहा हो। कथा के अनुरूप इस प्रसंग का ध्येय आज़ाद का ब्रह्मचारी जीवन में खो जाने के तथ्य जो स्थापित करना हो सकता है। इस पुस्तक का मूल जैसा कि नाम से विदित है, झाँसी ही है, अतः मास्टर रुद्रनारायण का व्यक्तित्व, आज़ाद के प्रवास में उनकी महती भूमिका और उनका आज़ाद से सम्बंध इस पुस्तक के केंद्र में रहा है। एक पुस्तक जितना संतुष्ट करती है उसी अनुपात में पाठक को अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित करती है, यही लेखक की सफलता है। भारत के क्रांतिकारी स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास के ओर पाठक की जिज्ञासा को जागृत करने के लिए डॉक्टर मनीष को साधुवाद। पुस्तक अमेजन और पढ़ेगा इंडिया जैसे विक्रय माध्यमों पर उपलब्ध है।

पुस्तक : क्रांतिदूत (भाग-1) झाँसी फाइल्स

लेखक: डॉ. मनीष श्रीवास्तव

प्रकाशक : सर्व भाषा ट्रस्ट

मूल्य : 150

http://www.saketsuryesh.net/2022/05/blog-post.html

समीक्षक -
साकेत सूर्येश